RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2015-17

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 76, अंक : 18 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 4 अगस्त, 2019

विक्रमी सम्वत् 2076, सृष्टि सम्वत् 1960853120

दयानन्दाब्द : 195 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–76, अंक : 18, 1-4 अगस्त 2019 तदनुसार 20 श्रावण, सम्वत् 2076 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

श्रेष्ठतम कर्म की प्रेरणा

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा व स्तेनऽईशत माघशꣳसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि।।

-यजु:० १।१

शब्दार्थ-सविता = सर्वजगदुत्पादक भगवान् **त्वा** = तुझको **इषे** = इष्ट-प्राप्ति के लिए तथा **त्वा** = तुझे **ऊर्जे** = बल-प्राप्ति के लिए प्रेरित करे। तुम सब **वायवः** = बलवान् **स्थ** = होवो **सविता** = जगत् का उत्पन्न करने वाला **देवः** = भगवान् **वः** = तुमको **श्रेष्ठतमाय** = श्रेष्ठतम **कर्मणे** = कर्म के लिए **प्रार्पयतु** = अर्पित करे। तुम **अघ्न्याः** = अहिंसनीय होकर **इन्द्राय** = ऐश्वर्यनिमित्त **भागम्** = भाग को **आप्यायध्वम्** = बढ़ाओ। तुम सारी प्रजाएँ **प्रजावतीः** = उत्तम सन्तानयुक्त **अनमीवाः** = रोगबीज से मुक्त तथा **अयक्ष्माः** = क्षय-रोग से रहित होवो। **वः** = तुम पर **स्तेनः** = चोर **मा+ईशत्** = शासक न हो और **मा** = न ही **अघशंसः** =पापाभिलाषी [पाप-प्रचारक शासक हो]। **अस्मिन्** = इस **गोपतौ** = रक्षक के अधीन तुम **ध्रुवाः** = निश्चल, हानिरहित और **बह्वीः** = बहुत **स्यात्** = होओ। हे राजन्! **यजमानस्य** = यज्ञ करने वाले परोपकारी के **पशून्** = पशुओं की **पाहि** = रक्षा कर।

व्याख्या-ऋग्वेद स्तुतिप्रधान वेद है। ऋषियों ने कहा है **'ऋग्भिः स्तुवन्ति'** = ऋचाओं के द्वारा स्तुति करते हैं। यजुर्वेद कर्मप्रधान वेद है। ऋषियों का कहना है-**यजुर्भिर्यदजन्ति** = याजुष मन्त्रों से कर्म करते हैं। कर्मप्रधान वेद का आरम्भ कर्मप्रेरणा [प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे] से हुआ है। इसके अन्तिम अध्याय में भी कर्मप्रेरणा है-**'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।'** [**यजु:० ४०।२**]= इस संसार में मनुष्य सम्पूर्ण आयु कर्म करता हुआ ही जीने की इच्छा करे। यजुर्वेद [४०।१५] = में पुनः कहा है-**'कृतꣳ स्मर'** अपने किये कर्मों का स्मरण कर। मध्य में भी आता है-**अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा** = कर्म करने वाले सुखदायी वाणी के साथ कर्म करते हैं। भाव यह कि सम्पूर्ण यजुर्वेद कर्म-प्रतिपादक है। साधारण कर्म भी नहीं, प्रत्युत 'श्रेष्ठतम कर्मों' का प्रतिपादक है। भगवान् का आदेश है-**'आप्यायध्वम्'** = फूलो-फलो। **'आप्यायध्वम् अघन्या'**= अहिंसित होकर फूलो-फलो। हिंसा के साधनों का भी निर्देश कर दिया है। रोग से शरीर पीड़ा होती है। यदि शासक चोर-डाकू या पापी हो तो सर्वात्मना हिंसा की वृद्धि हो जाती है, अतः आदेश किया-**'मा वः स्तेन ईशत माघशꣳसः'**= तुम पर चोर और पापी शासन न करें।

वेद के मतानुसार प्रजा राजा का निर्वाचन करती है। राजा के चोर तथा पापी होने से प्रजा की मनोवृत्ति का पता लगता है। यदि प्रजा के हृदय में चोरी और पाप की वासना प्रबल होगी, तो वह अवश्य चोर को अपना सिरमौर चुनेगी। ध्वनि से वेद ने पाप का निषेध करके अन्त में **'यजमानस्य पशून् पाहि' [यजमान के पशुओं की रक्षा कर]** कहकर हिंसा का स्पष्ट निषेध कर दिया है। सामान्यतः आजीविका के लिए कर्म करने होते हैं। अपनी उदरदरी की पूर्त्ति के लिए कहीं पशुओं की हिंसा में प्रवृत्त न हो जाए, इसलिए वेद ने कर्मप्रेरणा के साथ स्पष्ट ही कुकर्म का निषेध कर दिया है।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्।।

-पू० १.१.१३

भावार्थ-आप ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ही वेदों द्वारा सबके ज्ञानप्रदाता हैं। सबके कर्मों के यथायोग्य फलदाता भी आप हैं, सब जगह व्यापक होने से, सब ब्रह्माण्डों को आप ही धारण कर रहे हैं। आप ही हमारी भक्ति उपासना के श्रेष्ठ फल देने वाले हैं, आप इतने बड़े अनन्त श्रेष्ठ गुणों के धाम और पतित पावन परमदयालु सर्वशक्तिमान् हैं तो हमें भी योग्य है कि सारी मायिक प्रवृत्तियों से उपराम हो, आपकी ही शरण में आएँ, आपको ही अपना इष्ट देव परम पूजनीय समझ निशि-दिन आपके ध्यान और आपकी आज्ञापालन में तत्पर रहें।

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः।।

-यजु० १.१.१४

भावार्थ-हे जगत्पते! आपकी प्रेम से स्तुति प्रार्थना उपासना करने वालों को आप आत्मिक बल देते हैं, जिससे आपके प्यारे उपासक भक्त, अविद्यादि पञ्च क्लेश और सब प्रकार के दुःख और दुःख साधनों को दूर करते हुए, सदा आपके ब्रह्मानन्द में मग्न रहते हैं। कृपासिन्धो भगवन्! हम पर ऐसी कृपा करो कि हम भी आपके ध्यान में मग्न हुए, अविद्यादि सब क्लेशों और उनके कार्य दुःखों और दुःख-साधनों को दूर कर, आपके स्वरूपभूत ब्रह्मानन्द को प्राप्त होवें।

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।
अमैरमित्रमर्दय।।

-पू० १.१.२.१

भावार्थ-हे ज्ञानस्वरूप सर्व सुखदायक देव! आपकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना हम सदा करें, जिससे हमें आत्मिक बल मिले और ज्ञान का प्रकाश हो। जो लोग आपसे विमुख होकर आपकी भक्ति और वेदों की आज्ञा के विरुद्ध चलते, नास्तिक बन संसार की हानि करते हैं, उन पतितों तथा संसार के शत्रुओं को ही बाह्य शत्रु और आभ्यन्तर शत्रु काम, क्रोध, रोग, शोक, भयादि सदा पीड़ित करते रहते हैं।

इन्द्र व उसका सोमपान

ले.-महात्मा चैतन्यस्वामी, सुन्दरनगर (हिमाचल)

इन्द्र के सम्बन्ध में जन-साधारण में अनेक प्रकार की कल्पिनिक, निराधार, अवैज्ञानिक एवं हास्यास्पद कथाएं प्रचलित हैं। भागवत पुराण के छठे स्कन्ध के सातवें अध्याय में इस सम्बन्ध में लिखा है कि-'इन्द्र को त्रिलोकी का ऐश्वर्य पाकर अभिमान हो गया जिसके कारण वह धर्म मर्यादा एवं सदाचार का उल्लंघन करने लगा। एक समय की बात है, वह भरी सभा में अपनी पत्नी शची के साथ अपने ऊँचे सिंहासन पर बैठा हुआ था और उन्चास मरूतगण, आठ वसु, ग्यारह रूद्र आदित्य, ऋषिगण, विश्वदेवा, साध्यगण और दोनों अश्विनि कुमार उनकी सेवा में उपस्थित थे। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, ब्रह्मवादी, मुनिगण, विद्याधर अप्सराएं, किन्नर पक्षी और नाग उसकी सेवा और स्तुति कर रहे थे... सब ओर ललित स्वर में देवराज इन्द्र की कीर्ति का गान हो रहा था। ऊपर की ओर चन्द्रमण्डल के समान सुन्दर श्वेत छत्र शोभायमान था। चंवर एवं पंखे आदि महाराजोचित सामग्रियां यथा स्थान सुसज्जित हो सुशोभित हो रहे थे... इस प्रकार पुराणों में इन्द्र को देवताओं का राजा माना गया है जो सोने का मुकुट पहनता है, उसके हाथ में बज्र रहता है, वह ऐरावत नामक श्वेत हाथी की सवारी करता है, मेनका व रंभा आदि अप्सराएं उसके दरबार में नृत्य करती हैं, वह साधनारत ऋषि-मुनियों की तपस्या भंग करने के लिए अप्सराओं को भेजता है क्योंकि उसे सदा यह डर बना रहता है कि कोई ऋषि मेरे पद को प्राप्त न कर सके। वह स्वयं गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या का चरित्रभ्रष्ट करने के लिए गया था... पुराणों का इन्द्र युद्ध भी करता है, उसने दधीचि की हड्डियों से शस्त्र बनाकर वृत्रासुर का वध किया था... ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखा है कि इन्द्र देवों का राजा था जिसने गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या के साथ जार कर्म किया, गौतम ऋषि ने उसे शाप दिया कि तू सहस्त्र भग वाला हो जा, अहिल्या को शाप दिया कि तू पत्थर हो जा, श्रीरामजी की पादरज से वह शापमुक्त होकर पुनः स्त्री बनी थी। एक अन्य कथा पुराणों में इस प्रकार है कि त्वष्टा के पुत्र वृत्रासुर ने देवों के राजा इन्द्र को निगल लिया जिससे देवता भयभीत होकर विष्णु के पास गए, विष्णु ने उसके मारने का उपाय यह बताया कि समुद्र के झाग को उठाकर उस, पर मारना उससे वह मर जाऐगा। इसी प्रकार देवासुर संग्राम की कथा भी है। वृत्रासुर दैत्यों का राजा था जिसके साथ बहुत बड़ी दैत्यों की सेवना थी तथा उसका पुरोहित शुक्राचार्य था। इसी प्रकार देवताओं का राजा इन्द्र था तथा उसके पास भी सेना थी और उसका पुरोहित वृहस्पति था... राक्षसों को मारने के लिए दधीचि ऋषि जी ने अपनी हड्डियां प्रदान की जिनके शस्त्र से इन्द्र ने वृत्रासुर का बध किया...

वास्तविकता यह है कि इन्द्र के नाम पर पौराणिक काल में इस प्रकार की कल्पनाएं इसलिए गढ़ ली गई क्योंकि वेद में आए इन्द्र, वृत्र, गौतम, अहिल्या, दधीचि, अप्सरा, रंभा, उर्वशी आदि शब्दों को सही-सही परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा गया क्योंकि सायण एवं महिधर आदि तथा पाश्चात्य विद्वानों ने वेद मन्त्रों के अध्यात्म, अधिदैवत और अधियज्ञ आदि अर्थ करने की परम्परा का निर्वहन नहीं किया। पुराण साहित्य तो वैसे भी अनेक प्रकार की अविश्वसनीय, अनर्गल, काल्पनिक, सृष्टिनियम के विरूद्ध बातों तथा हमारी गरिमामयी प्राचीनतम वैदिक-संस्कृति की ज्ञान-गरिमा रूपी विरासत को नीचा दिखाने की बातों से भरा पड़ा है। संभवतः हमारी गरिमापूर्ण संस्कृति एवं समुज्जवल इतिहास को पूर्णरूप से अविश्वसनीय, अवैज्ञानिक, अश्लील और हेय दिखाने के लिए इस प्रकार के साहित्य की रचना विधिवत् करवाई गई होगी और इसका कुपरिणाम भी हम आज देख रहे हैं... इस प्रकार के निराधार ग्रन्थों को विश्वसनीयता की श्रेणी में लाने के लिए इनके रचयिता के रूप में महर्षि वेदव्यासजी का नाम लिया जाता है मगर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का अभिमत है कि-'जो अठारह पुरणों के कर्त्ता व्यासजी होते, तो उनमें इतने गपोड़े न होते। क्योंकि शारीरिक सूत्र, योगशास्त्र के भाष्यादि व्यासौक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यासजी बड़े विद्वान् सत्यवादी धार्मिक योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते। और इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी परस्पर विरोधी लोगों ने भागवतादि नवीन कपोलकल्पित ग्रन्थ बनाए हैं, उनमें व्यासजी के गुणों का लेश भी नहीं था। और वेदशास्त्रविरूद्ध असत्यवाद लिखना व्यास सदृश विद्वानों का काम नहीं। किन्तु यह काम (वेद-शास्त्र) विरोधी स्वार्थी अविद्वान् लोगों का है।' अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में महर्षि दयानन्द जी ने प्रमाण भी दिया है कि-'यह भागवत बोपदेव का बनाया है, जिसके भाई जयदेव ने 'गीतगोविन्द' बनाया है। देखो उसने यह श्लोक अपने बनाए 'हिमाद्रि' नामक ग्रन्थ में लिखे हैं कि 'श्रीमद्भागवतपुराण मैंने बनाया है।' उस लेख के तीन पत्र हमारे पास थे। उनमें से एक पत्र खो गया है। उस पत्र में श्लोकों का जो आशय था, उस आशय के हमने दो श्लोक बना के नीचे लिखे हैं। जिसको देखना हो, वह 'हिमाद्रि' ग्रन्थ में देख लेवें-'

'हिमाद्रेः सचिवस्यार्थे सूचना क्रियतेऽधुना। स्कन्धाऽध्या-कथानां च यत्प्रमाणं समासतः।।

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं च मयेरितम्। विदुषा बोपदेवेन श्रीकृष्णस्य यशोन्वितम्।।'

इस प्रकार के नष्टपत्र में श्लोक थे। अर्थात् राजा के सचिव हिमाद्रि ने 'बोबदेव' पण्डित से कहा कि-'मुझको तुम्हारे बनाये श्रीमद्भागवत के सम्पूर्ण सुनने का अवकाश नहीं है। इसलिए तुम संक्षेप से श्लोकबद्ध सूचीपत्र बनाओ। जिसको देख के मैं श्रीमद्भागवत की कथा को संक्षेप से जान लूँ। सो नीचे लिखा हुआ सूचीपत्र उस 'बोपदेव' ने बनाया। उन में से उस नष्ट पत्र में 10 श्लोक खो गए हैं। ग्यारहवें श्लोक से लिखते हैं। ये नीचे लिखे श्लोक सब बोबदेव ने बनाये हैं। वे-

बोधयन्तीति हि प्राहुः... प्रोक्ता द्रौणिजयादयः।। (इति प्रथम स्कन्धः) इत्यादि बारह स्कन्धों का सूचीपत्र इसी प्रकार 'बोबदेव' पण्डित ने बनाकर 'हिमाद्रि' सचिव को दिया। जो विस्तार देखना चाहे, वह बोपदेव के बनाये हिमाद्रि ग्रन्थ में देख लेवें। इसी प्रकार अन्य पुराणों की लीला समझनी चाहिए। परन्तु उन्नीस बीस इक्कीस एक दूसरे से बढ़कर हैं।... पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक जी अपनी टिप्पणी में लिखते हैं-'द्र०-नीलकण्ठ कृत देवीभागवत की टीका का उपोद्घात-'विष्णु-भागवतं बोपदेवकृतमिति वदन्ति।' शाहजहां के समकालिक कवीन्द्राचार्य के पुस्तकालय के सूचीपत्र (बड़ोदा से छपा) में भागवत को बोपदेवकृत लिखा है।'

इन्द्र के सम्बन्ध में विशद् चर्चा हम आगे करने का प्रयास करेंगे मगर यहां पर केवल इन पौराणिक कथाओं के वैदिक स्वरूप पर थोड़ा सा विचार कर लेते हैं। वेद में इन्द्र सूर्य का भी नाम है तथा वृत्र बादलों का नाम है। ऋग्वेद के एक मन्त्र (1-32-10) पर विचार करते हुए यास्क लिखते हैं-**तत्रको वृत्रो मेघ इति नैरूक्ता अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभाव कर्मणा वर्ष कर्म जायते।** अर्थात् वृत्र नाम मेघ का है। सूर्य की किरणों तथा बादल के जल के मेल से वर्षा होती है। **ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यान संयुक्ता।** ऋषि अर्थ को समझने के लिए आलंकारिक आख्यानों का सहारा लेते हैं। वेद में इन्द्र सम्बन्धी आलंकारिक वर्णनों को अपनी अज्ञानता के कारण पुराणों में काल्पनिक और विकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। पाश्चात्य विद्वानों तथा आगे आने वाले संस्कृत के कवियों ने भी इसी दूषित पद्धति का निर्वहन करते हुए न केवल अर्थ का अनर्थ किया बल्कि वेद में इतिहास आदि भी सिद्ध करने का कुत्सित प्रयास किया है। उपरोक्त वेद मन्त्र में इन्द्र सूर्य को कहा गया है जो सभी नक्षत्रों का राजा है, इसलिए इसे देवराज इन्द्र कहा गया है। सूर्य रूपी इन्द्र स्वर्गलोग अर्थात् द्युलोक में रहता है। इसकी किरणें ही बज्र है। यह सूर्य बादलों से ऊपर रहता है तथा ये बादल ही उसका ऐरावत नामक हाथी है। सूर्य की किरणें अपसरण अर्थात् गति करने के कारण अप्सराएं कहलाती हैं, जो नृत्य करती हुई दिखाई देती हैं। **'अप्सु सरन्ति ताः अप्सराः'** जल में प्रविष्ट होती हैं इसलिए किरणें अप्सराएं हैं। लहरों के साथ किरणें भी नृत्य करती हैं यही इनका नाचना है। इस सूर्य अर्थात् इन्द्र का युद्ध बादलों अर्थात् वृत्र से होता है। इन्द्र अपने किरणों रूपी बज्र से वृत्रासुर को मारते हैं जिससे वर्षा होती है और बादल मर जाते हैं। सूर्य की किरणों का नाम रंभा, उर्वशी आदि भी है। जब अन्तरिक्ष में सूर्य की किरणें फैलती हैं तब सातों ऋषियों का (सात तारों का) तप समाप्त हो जाता है अर्थात् वे निस्तेज हो जाते हैं, यही अप्सराओं (किरणों के द्वारा ऋषियों का तप भंग करना कहा गया है....

ऋग्वेद के मन्त्र (1-84-13) का भाष्य करते हुए स्कन्द स्वामी ने एक कथा गढ़ ली कि देवताओं ने एक बार ब्रह्मा से कालकंज नाम के असुर को मारने का उपाय पूछा तो ब्रह्मा ने उन्हें दध्यङ्, ऋषि के पास उपाय जाने के लिए भेजा। देवता उनके

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के तीसरे नियम में वेदों के महत्व को प्रतिपादित करते हुए और स्वाध्याय की ओर प्रेरित करने की दृष्टि से लिखा है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द का इस नियम को लिखने का यही आशय था कि सभी सत्य विद्याओं का मूल स्रोत वेद हैं। इसलिए हर मनुष्य को वेदों का स्वाध्याय करते हुए उन सत्य विद्याओं को जानने का प्रयास करना चाहिए। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने वेदों का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना आर्यों का परम धर्म बताया है। जो इस परम धर्म का पालन नहीं करता , वह आर्य कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता। इसलिए हर व्यक्ति को स्वाध्याय की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए क्योंकि स्वाध्याय आत्मा का भोजन है। बिना ज्ञान के मनुष्य की आत्मिक उन्नति सम्भव नहीं है और ज्ञान की प्राप्ति बिना स्वाध्याय के सम्भव नहीं है।

वैदिक धर्म में स्वाध्याय को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। वैदिक संस्कृति में मनुष्य जीवन को चार भागों में बांटा गया है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। स्वाध्याय को हमारी संस्कृति में इतना महत्व दिया गया है कि यह प्रत्येक वर्ण और आश्रम के लिए अनिवार्य और आवश्यक है। आश्रमों में प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य आश्रम केवल गुरूओं के सानिध्य में रहकर स्वाध्याय के लिए है। जब विद्या पूरी हो जाती है तो समावर्तन के समय स्नातक को आचार्य शिक्षा देता है कि–**स्वाध्यायान्मा प्रमदः। स्वाध्याय प्रवचनाभ्याम् न प्रमदितव्यम्** अर्थात् जिसका स्पष्ट प्रयोजन यही है कि आगे चलकर गृहस्थाश्रम में भी स्वाध्याय करते रहो और उसमें कभी प्रमाद न करो। गृहस्थ के पश्चात वानप्रस्थी का भी प्रधान कर्म स्वाध्याय और तप ही रह जाता है। सन्यासी का समय भी परम तत्त्व चिन्तन और उपदेश के अंगीभूत स्वाध्याय में ही व्यतीत होता है। सन्यासी के लिए आज्ञा है कि **–संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकन्न संन्यसेत्।** अर्थात् सन्यासी सभी कर्मों को त्याग दे परन्तु वेद का त्याग न करे। हमारे ऋषियों–मुनियों के द्वारा स्वाध्याय को इतना महत्त्व देने का उद्देश्य यही है कि जिस प्रकार शरीर की स्थिति और उन्नति मन से होती है उसी प्रकार मनुष्य की आत्मिक उन्नति भी स्वाध्याय के द्वारा होती है। आत्मिक उन्नति के बिना मनुष्य जीवन के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। जिस मनुष्य की केवल शारीरिक उन्नति हुई है वह मनुष्य आचरण में पशु के समान होता है। स्वाध्याय के द्वारा मनुष्य का व्यक्तित्व निखर कर सामने आता है।

वेद प्रचार आर्य समाज का मेरू दण्ड है। यही आधारशिला है जिस पर हमारा संगठन आधारित है। आर्य समाज एक वैचारिक संगठन है। अन्य मत–मतान्तारों की तरह इसमें पाखण्ड, अन्धविश्वास को बढ़ावा नहीं दिया जाता, लोगों को अन्धश्रद्धा के नाम पर किसी बात को मानने पर विवश नहीं किया जाता अपितु स्वाध्याय, चिन्तन और मनन करते हुए उसे मानने के लए प्रेरित किया जाता है। इसलिए आर्य समाज की उन्नति तब तक सम्भव नहीं है, जब तक उसके अनुयायी स्वाध्याय को अपने जीवन का आवश्यक अंग नहीं बनाएंगे। इसलिए आर्य समाज से जुड़े हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह प्रतिदिन समय निकाल कर स्वाध्याय अवश्य करें। आर्य समाजों में भी वेद प्रचार को और स्वाध्याय को बढ़ावा देने वाले कार्यक्रमों, चिन्तन शिविरों, शंका समाधान शिविरों का आयोजन करना चाहिए। इस आयोजन के द्वारा जन साधारण को जागृत करना चाहिए। स्वाध्याय की वृत्ति लोगों के अन्दर पैदा करने की आवश्यकता है। इसके लिए आर्य समाजों को वैदिक साहित्य लोगों में बांटकर उन्हें स्वाध्याय के प्रति जागरूक करना है। वैदिक काल में वेदों के पठन–पाठन का विशेष प्रचार था और लोग नित्य ही वेद प्रचार में रत रहते थे तथा वर्षा ऋतु में वेद के पारायण का विशेष आयोजन किया जाता था। इसका कारण यह था कि भारतवर्ष वर्षाबहुल तथा कृषि प्रधान देश है। यहां की जनता आषाढ़ और श्रावण में कृषि के कार्यों में विशेषत: व्यस्त रहती है। श्रावणी फसल की जुताई और बुआई आषाढ़ से प्रारम्भ होकर श्रावण के अन्त तक समाप्त हो जाती है। इस समय श्रावण पूर्णिमा पर ग्रामीण जनता कृषि के कार्यों से निवृत्ति पाकर तथा आने वाली फसल के आगमन से आशान्वित हो जाती है। क्षत्रिय वर्ग भी इस समय दिग्विजय यात्रा से विरत हो जाता है। वैश्य भी व्यापार, यात्रा आदि कार्यों से विश्राम पाते हैं। इसलिए जनता इस दीर्घ अवकाश काल में वेद पारायण यज्ञों तथा प्रवचन में प्रवृत्त होती थी। वर्षा ऋतु में ऋषि–मुनि और सन्यासी महात्मा भी वर्षा के कारण वनस्थली और जंगलों को छोड़कर ग्रामों के निकट आकर रहने लगते थे और वहीं वेद पठन, धर्मोपदेश और ज्ञानचर्चा में अपना चातुर्मास बिताते थे। श्रद्धालु, श्रोता और वेदाध्ययन करने वाले लोग ज्ञान श्रवण और वेदपाठ से अपने समय को सफल बनाते थे और ऋषियों के इस प्रिय कार्य से उनका तर्पण मानते थे।

श्रावणी आर्यों के प्रसिद्ध पर्वों में एक महान् पर्व है। यह पर्व वैदिक पर्व है और इस पर्व का सीधा सम्बन्ध वेद के अध्ययन और अध्यापन से है। इसी आधार को लेकर आर्य समाजों में वेद प्रचार सप्ताह का आयोजन किया जाता है जिसका उद्देश्य वेद की वाणी को घर–घर तक पहुँचाना होता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने गुरू विरजानन्द जी को दी हुई प्रतिज्ञा का पालन करते हुए संसार के कल्याणार्थ वेद के अध्ययन के मार्ग को प्रशस्त किया है। अत: महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज का कर्त्तव्य है कि वह वेद प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाए। वर्तमान में भी समाज में पाखण्ड और अन्धविश्वास तीव्रता के साथ बढ़ रहा है। प्रतिदिन नए–नए गुरू सामने आ रहे हैं जो धर्म के ज्ञान से शून्य है। सुबह उठते ही टी.वी. चैनलों पर भविष्यवाणियां करते हुए लोगों का भविष्य बताते हुए इन पाखण्ड़ियों को देखा जा सकता है। इसलिए आर्य समाजों को इन सब चुनौतियों का सामना करने के लिए स्वयं को तैयार करना होगा। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए और संसार का कल्याण करने के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के छठे नियम में क्रमश: शारीरिक उन्नति, आत्मिक उन्नति और सामाजिक उन्नति करने का निर्देश दिया है। शुद्ध आहार–विहार शारीरिक उन्नति तथा स्वाध्याय मनुष्य जीवन की आत्मिक उन्नति का आधार है। शारीरिक और आत्मिक रूप से उन्नत व्यक्ति ही सामाजिक उन्नति करने के योग्य बन सकता है।। शतपथ ब्राह्मण में स्वाध्याय की प्रशंसा करते हुए लिखा गया है कि स्वाध्याय करने वाला सुख की नींद सोता है, अपना परम चिकित्सक होता है, उसमें इन्द्रियों का संयम और एकाग्रता आती है और प्रज्ञा की अभिवृद्धि होती है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजों से निवेदन है कि वे इन दिनों में अपनी– अपनी आर्य समाजों में वेद प्रचार सप्ताह का आयोजन करके वेद प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाए क्योंकि संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। श्रावणी के पर्व पर लोगों में वैदिक साहित्य का निशु:ल्क वितरण करें। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के द्वारा सारा वैदिक साहित्य आधे मूल्य पर वेद प्रचारार्थ दिया जाता है। इस महान् उद्देश्य को पूरा करने के लिए हमें वेद के पवित्र ज्ञान का प्रचार करना होगा। वेद का ज्ञान सूर्य के प्रकाश के समान है। जिस प्रकार सूर्य की किरणों से अन्धकार दूर होता है उसी प्रकार वेद रूपी सूर्य के ज्ञान की किरणों से अज्ञान रूपी अन्धकार, कुरीतियों तथा बुराईयों का नाश होता है।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

वेदों में ब्रह्म का स्वरूप निरूपण

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, 73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

(गतांक से आगे)

ऋ. 10.7.28 में कहा गया है कि सर्वशक्तिमान परमात्मा के गुण और सामर्थ्य मनुष्य की कथन शक्ति से बाहर है।

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहित। यजु. 31.20

जो देवों के लिए प्रकाशित हो रहा है और देवों का पुरोहित है अर्थात् वह प्रकाशकों का भी प्रकाशक है।

वेदाहमेतं पुरूषं महान्तमादित्य वर्णं तमसा परस्तात।। यजु. 31.18.

(अहम्) मैं जानता हूँ (एतम्) उस (पुरूषम्) ब्रह्म को (महान्तम्) बड़े से बड़े को (आदित्य वर्णम्) आदित्य आदि के रचक प्रकाशक स्वरूप को (तमस:) अंधकार अविद्यादि दोष के (परस्तात) रहित को।

परमात्मा अजन्मा अनादि है इसे निम्न मंत्र व्यक्त कर रहा है।

सनातनमेनमाहुरूताद्य स्यात् पुनर्णव:।। अथर्व. 10.8.23.

विद्वान् लोग इस ब्रह्म को सनातन, नित्य, स्थाई, अजन्मा, कहते हैं और वह प्रतिदिन नया दिखाई देता है।

ब्रह्म, अजर, अमर, अविनाशी है इसे अथर्ववेद कहता है-

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति। देवश्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।। अथर्व. 10.8.2.

विद्वान् व्यक्ति परमात्मा को अत्यन्त समीप से देखता है और उसका आश्रय लेता है। वह किसी भी स्थिति में परमात्मा को नहीं छोड़ता है उस परमपिता परमात्मा की बुद्धि को ध्यान से देखो वह न तो कभी मृत्यु को प्राप्त हो सकता है और न जीर्ण ही हो सकता है।

अकामो धीरो अमृत स्वयंभू रसेन तप्तोन कुतश्चनोन:।
तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योरात्मान धीरमजरं युवानम्।।
अथर्व. 10.8.44.

भावार्थ-परमात्मा निष्काम, धैर्यवान्, अमर, अनादि पराक्रम से परिपूर्ण है। उसमें कहीं से भी न्यूनता नहीं है। उस ही परमात्मा को जानकर विद्वान् पुरूष मृत्यु से भयभीत नहीं होता है।

इसी भावना का ऋ. 9.3.1 में इस प्रकार वर्णन किया गया है-

एष देवो अमर्त्य पर्णवारिव दीयति। अभि द्रोणान्या सदम्।।

(एष:देव:) जिस परमात्मा का हमने वर्णन किया वह (अमर्त्य:) अविनाशी है। (आसदम्) सर्वत्र व्यापक होने से वह परमात्मा (अभि द्रोणानि) प्रत्येक ब्रह्माण्ड को (पर्णवी:) विद्युत शक्ति के (इव) समान (दीयति) प्राप्त है।

ब्रह्म अजेय है, अभय है इस पर वेद का कथन है न स जीयते मरूतो न हन्यते सधति न व्यथते न रिष्यति।।

ऋ. 5.54.7.

अर्थ-हे मनुष्यों। वह ब्रह्म न जीता जाता, न नाश किया जाता न नाश होता, न पीड़ित होता और न हिंसा करता है।

स्वयं ब्रह्म ऋग्वेद 10.48.5. में घोषित करते हैं।

अहमिन्द्रो न पराजिग्य इद्धनं न मृत्ययेऽवतस्थे कदाचन।

मैं सर्वशक्तिमान हूँ। कभी किसी से पराजित नहीं होता हूँ। मेरा धन प्रकृति भी पराजित नहीं होती है। मैं कभी भी मृत्यु के लिए उपस्थित नहीं होता हूँ।

ऋ. 1.99.2. में कहा गया है कि वह परमात्मा अनन्त है। भूत काल में ऐसा कोई नहीं हुआ जिसने उसकी सीमा को पार किया है न वर्तमान काल में और न भविष्य में कभी उसे लांघा जा सकेगा। वह ब्रह्म खण्ड रहित है। उसके खण्ड नहीं किये जा सकते हैं। अथर्ववेद 10.8.21. में यह वर्णित है। ब्रह्म अद्वितीय है, अनुपम है इसलिए अथर्व. 13.4.1. में कहता है-तमिदं निगतं सह: स एष एक एक वृदेक एव।

(इदं) यह (सह:) सामर्थ्य (तम्) उस परमात्मा को (निगतम्) निश्चय करके प्राप्त है। (स) वह (एष:) आप (एक:) एक (एक वृत्) अकेला वर्तमान (एक एव) एक ही है।

वह ब्रह्म निराकार है इसलिए उसकी प्रतिमा भी नहीं बन सकती है। न तस्य प्रतिमाऽस्ति। यजु. 32.3.

यजुर्वेद 40.8. में भी उसे शरीर रहित निराकार बताया गया है। वह ब्रह्म नित्य पवित्र और मुक्त है इसे सामवेद कहता है-एतोन्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना।

शुद्धौरूक्थै वां वृध्वासं शुद्धै आ शीर्वान्ममत्तु।। साम.म.सं. 350

अर्थ-(एत उ) मित्रों। आओ। आओ। (शुद्धेन) पवित्र स्तोत्रों से (वावृध्वासम्) अति महान् (शुद्धम्) पवित्र (इन्द्रम्) परमेश्वर की (स्तवाम्) स्तुति करें। (शुद्धै:) पवित्र स्तोत्रों से (आशीर्वान्) आशीर्वाद युक्त वह (नु) शीघ्र (ममत्तु) हम पर प्रसन्न होवे। परमात्मा न्यायकारी, दयालु और कर्मफल प्रदाता है।

कोऽदाता कस्माऽअदात् कामोऽदात्कामायादात्।
कामो दाता काम: प्रति ग्रहीता कामैत्ते।। यजु. 17.48.

(क:) कौन कर्म फल को (अदात्) देता है और (कस्मै) किसके लिए (अदात्) देता है? उत्तर-(काम:) जिसकी कामना सब करते हैं कि (काम:) परमेश्वर (दाता) देने वाला है (काम:) कामना करने वाला जीव (प्रति गृहीता) लेने वाला है। हे (काम) कामना करने वाले जीव। (ते) तेरे लिए मैंने वेदों के द्वारा (एतत्) यह सब बता दिया है।

परमात्मा दयालु है इसलिए ऋ. 8.80.1. में कहा गया है-न ह्यन्यं बढाकरं मर्डितारं शतक्रतो। त्वं न इन्द्र मृडय।।

(शतक्रतो) हे अनन्त कर्मा ईश्वर। तुझसे (अन्यं) दूसरा कोई (मर्डितारं) सुखकारी देव (न हि) नहीं है। (अकरम्) यह मैं अच्छी तरह से देखता और सुनता हूँ। (बढ़ा) यह सत्य है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। हे (इन्द्र) परमात्मा। इसलिए (न:) हम लोगों को (त्वं) तू (मृढय) सुखी बना।

हम सामान्य लोग उस परमात्मा को नहीं जानते हैं जिसके विषय में ऋग्वेद 10.82.7. में कहा गया है-न तं विदाथ य इमा जनानान्यद्युष्मा-कमन्तरं बभूव।

हे जीवों। तुम उस परमात्मा को नहीं जानते हो जो इन समस्त लोक-लोकान्तरों को उत्पन्न करता है तथा तुमसे भिन्न दूसरा होकर तुम्हारे हृदय में विद्यमान है। वह एक है परन्तु भिन्न-भिन्न गुणों के कारण अनन्त नामों वाला बन गया है। अथर्ववेद 13.4.5. में कहा गया है-

सो अग्नि: स उ सूर्य: स उ एव महायम:।

वेदों में ब्रह्म विद्या पर सैकड़ों मंत्र है। यहां एक लघु लेख में उन सबका दिया जाना संभव नहीं है परन्तु इस लेख में हमने कई प्रमाण देकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वेद में ब्रह्म विद्या का न अभाव है और न ही यह केवल अपरा विद्या का ग्रन्थ है। वेदों में और अपरा दोनों विद्याओं को उचित स्थान दिया गया है।

योग-ध्यान, साधना शिविर

जम्मू कश्मीर की सुरम्य एवं मनोरम पहाड़ियों में स्थित आनन्दधाम आश्रम (गढ़ी आश्रम) उधमपुर, (जम्मू कश्मीर) में आश्रम के मुख्य संरक्षक एवं निदेशक पूज्य महात्मा चैतन्यस्वामी जी की अध्यक्षता एवं पूज्य मां सत्यप्रियायति जी के सान्निध्य में दिनांक 15 से 22 सितम्बर-2019 तक नि:शुल्क योग-ध्यान-साधना शिविर का आयोजन किया गया है। जिसमें अनुभवी आचार्यों एवं महात्माओं द्वारा उपासना, प्राणायाम, योगासन आदि का क्रियात्मक अभ्यास कराया जाऐगा। इस अवसर पर पूज्य चैतन्यस्वामी जी के ब्रह्मत्व में प्रतिवर्ष की भान्ति सामवेद पारायण-यज्ञ का आयोजन भी किया गया है। उपनिषद् एवं योग-दर्शन पर मुख्यत: चर्चाएं होंगी तथा शिविर में साधक अपनी शंकाओं का समाधान भी कर सकेंगे। आश्रम में पूज्य स्वामी जी के सान्निध्य में पहले लगाए गए शिविरों में शिविरार्थियों के बहुत अच्छे अनुभव रहे हैं इसलिए साधकों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। अत: इच्छुक साधक अपना स्थान आरक्षित करने के लिए फोन नं. 09419107788 व 09419198451 पर तुरन्त सम्पर्क करें।

-भारतभूषण आनन्द, आश्रम ट्रस्ट प्रधान

"महर्षि दयानन्द की गुरु श्रृंखला की कुछ जानकारियाँ"

ले.-पं. खुशहाल चन्द्र आर्य C/o गोबिन्द राय आर्य एण्ड सन्ज १८० महात्मा गान्धी रोड़, (दोतल्ला) कोलकत्ता-700007

मैं महर्षि दयानन्द की गुरु श्रृंखला के सम्बन्ध में कुछ लिखूँ, उससे पहले मैं उनके जीवन परिचय पर कुछ प्रकाश डालना चाहता हूँ। महर्षि दयानन्द के बाल्यकाल का नाम मूलशंकर था। वे मौरवी राज्य के टंकारा नामक ग्राम में एक सुसम्पन्न, उच्चकुलीन वेदपाठी सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण पिता कर्षण जी तिवाड़ी माता अमृता बेन के कुल में दीपक के रूप में फाल्गुन कृष्णा दशवीं सम्वत् 1881 तदनुसार 12 फरवरी सन् 1825 में उनका जन्म हुआ। मूलशंकर अपने जीवन में अनेकों गुरूओं से अलग-अलग विषयों का ज्ञान प्राप्त करते हुए अन्त में व्याकरण के सूर्य स्वामी विरजानन्द से तीन वर्ष उनकी गोद में बैठकर वेदों का पूरा ज्ञान प्राप्त किया और व्याकरण पर पूरा अधिकार बनाकर वेदों के अविद्वान्, स्वार्थी पण्डितों ने जो गलत अर्थ लगाकर लोगों को ठग रहे थे तथा वेदों के प्रति अश्रद्धा के भाव पैदा कर दिये थे। लोग वेदों से दूर होते जा रहे थे जिससे देश में अज्ञान अन्धविश्वास व पाखण्ड का बोलबाला हो गया था, ऐसी स्थिति में देवदयानन्द ने वेदों के मन्त्रों का सही अर्थ लगाकर वेदों की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया जिसके लिए महर्षि दयानन्द ने किन किन गुरूओं से शिक्षा ग्रहण की, उसका उल्लेख इसी भाँति है, इसको पढ़कर सुधि पाठकों की महर्षि दयानन्द के गुरू श्रृंखला की जानकारी बढ़ेगी, ऐसी मुझे आशा है।

१. सब से प्रथम गुरू, महर्षि के पिता कर्षण जी तिवाड़ी-महर्षि जी के सब से बड़े गुरू उनके ही पिता कर्षण जी तिवाड़ी थे, जिन्होंने उनको पाँच वर्ष की आयु में ही विद्या पढ़ाना आरम्भ कर दिया। फिर आठ वर्ष की आयु में उसका यज्ञोपवीत संस्कार बड़ी विधिपूर्वक करवाया। फिर उसको सामवेद का अध्ययन करवाया और कुछ ही दिनों बाद उसे स्थापित कराकर उन्हें रूद्राष्टाध्यायी पढ़ाई गई, तत्पश्चात् यजुर्वेद संहिता 14 वर्ष की आयु में मूलशंकर ने कण्ठस्थ कर ली और अन्य वेदों के कुछ अंश भी याद कर लिए। इतना ही नहीं अपितु उन्होंने इस अल्पायु में ही निरुक्त, निघण्टु, पूर्व मीमांसा व कर्म काण्ड के कतिपय अन्य ग्रन्थों का भी अध्ययन पूर्ण कर लिया।

जब शिवरात्रि को मूलशंकर ने शिवलिंग पर एक चूहे को उछलते-कूदते देख और भक्तों द्वारा चढ़ाई हुई सामग्री को खाते और उसी पर मल-मूत्र करते हुए देख बालक के मस्तिष्क में एक हलचल सी मच गई। उसका कारण यह था कि उसे जिस शिव की बात बताई गई थी कि वह शंकर प्रलयकारी, दुष्ट विनाशक, त्रिशूलधारी संहारक देवता है जिसके भृकुटि तानने मात्र से ही विश्व के प्रकम्पित हो जाने की कल्पना उसके हृदय में समाई हुई थी। यह दृश्य देखकर उसने सोचा कि जो शिव अपनी रक्षा भी नहीं कर सकता। वह हमारी रक्षा क्या करेगा? यह सोचकर उसकी मूर्त्तिपूजा के प्रति आस्था उठ गई और शिव रात्रि का व्रत तोड़ कर वह घर पर आकर माता जी से भोजन करके सो गया और उसी दिन से उसको सच्चे शिव की खोज करने के लिए घर छोड़ कर वैराग्य की भावना उत्पन्न हो गई। इसके बाद सोलह वर्ष की आयु में उसकी छोटी बहन जो उसे बहुत प्यारी थी उसका हैजे में स्वर्गवास हो गया और उन्नीस वर्ष की आयु में उसका चाचा जो उसको बहुत प्यार करता था उसका भी हैजे में स्वर्गवास हो गया। तब मूलशंकर की वैराग्य की भावना और अधिक बलवती हो गई और 21 वर्ष की आयु में उसने गृह त्याग दो उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कर दिया। पहला उद्देश्य सच्चे शिव की खोज और दूसरा उद्देश्य मृत्यु पर विजय प्राप्त करके मृत्युञ्जय बनने की भावना।

जब मूलशंकर गृह त्याग करके जंगल की ओर बढ़ रहा था तब उसको साधु वेश में कई ठग मिले जिन्होंने उसके शरीर पर पहने हुए गहने अगूँठी आदि भी ले लिये। जब वह आगे बढ़ रहा था तब उसको सायलाग्राम के पास एक दूसरा गुरू मिला जो ब्रह्मचारी था। मूलशंकर ने उससे ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा ली और वह "शुद्ध चैतन्य" बन काषाय वस्त्र धारण कर हाथ में तुम्बा पकड़ लिया और योगाभ्यास में दत्तचित हो गये। यहाँ से वे कोट काँगड़ा होते हुए सिद्धपुर पहुँचे। वहाँ से वे अहमदाबाद होते हुए बड़ौदा पहुँचे। अब "शुद्ध चैतन्य" ने यह समझकर कि भोजनादि बनाने में काफी समय लग जाता है, इसलिए उसकी सन्यासी बनने की इच्छा हुई और संयोग से वे बड़ौदा से नर्मदा नदी के किनारे-किनारे चलते हुए चाणोद पहुँच गये। वहाँ से थोड़ी ही पूरी पर एक जंगल में एक अच्छे विद्वान् दण्डी स्वामी पूर्णानन्द परम हंस आये हुए थे। शुद्ध चैतन्य उस परम हंस के पास जा कर उनसे सन्यास की दीक्षा देने के लिए निवेदन किया। पहले तो उसने कुछ आनाकानी की परन्तु विशेष अनुरोध पर उसने शुद्ध चैतन्य को सन्यास की दीक्षा देकर उसका नाम "दयानन्द सरस्वती" रख दिया और एक दण्ड और कमण्डल धारण करवा दिया। ये उनके तीसरे गुरू हुए। इनके चरणों में बैठकर स्वामी दयानन्द ने ब्रह्म विद्या सम्बन्धी कई ग्रन्थों का अध्ययन किया। कुछ दिन ठहरकर स्वामी पूर्णानन्द तो द्वारका चले गये और स्वामी दयानन्द वहीं चाणोद में ही रहे। यहाँ उनका सम्पर्क दो महान् योगियों ज्वालानन्द पुरी एवं शिवानन्दपुरी से हुआ। उनसे देव दयानन्द ने योग सीखने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा कि हम अहमदाबाद के दुग्धेश्वर मन्दिर जा रहे हैं। स्वामी जी को वहाँ बुला लिया और वहाँ उनको योग के भेद और रहस्य समझाकर तृप्त कर दिया जिसके लिए स्वामी जी ने उनका बहुत अधिक आभार व्यक्त किया। ये स्वामी जी के चौथे व पाँचवें गुरू हुए।

यहाँ स्वामी जी हरिद्वार कुम्भ मेला में गये। वहाँ अनेक साधु सन्तों से मिल कर स्वामी जी ऋषिकेश होते हुए केदारनाथ घाट आये वहाँ उनको गंगा गिरी नामक एक श्रेष्ठ संन्यासी मिले उनसे भी दो मास तक स्वामी जी ने योगाभ्यास सीखा तथा विचार विमर्श किया। इसलिए गंगा गिरी स्वामी जी के छठे गुरू हुए। तत्पश्चात् स्वामी जी 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में संलग्न स्वामी ओमानन्द जो स्वामी पूर्णानन्द के गुरु थे, स्वामी पूर्णानन्द जो स्वामी दयानन्द के गुरू थे, उन्होंने ही स्वामी दयानन्द को अपने शिष्य स्वामी विरजानन्द के पास मथुरा जाने की कही थी और कहा था कि वही आपकी ज्ञान-पिपासा को शान्त कर देगा। ये सभी सन्यासी 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में शामिल थे। स्वामी दयानन्द भी अपना भेद छिपा कर इस संग्राम में कार्यरत् थे। यह हमारा इतिहास बतलाता है। इस 1857 के संग्राम के समय इन सन्यासियों की आयु इसी भाँति थी। स्वामी ओमानन्द की आयु 160 वर्ष, स्वामी पूर्णानन्द की आयु 110 वर्ष स्वामी विरजानन्द की आयु 79 वर्ष और स्वामी दयानन्द की आयु 33 वर्ष की थी।

वहाँ से स्वामी जी हिमालय के शिखर की ओर चल पड़े और अनेकों स्थान देखते हुए ओखी मठ, जोशी मठ तथा बदरीनारायण होते हुए अलक नन्दा नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ अनेकों कष्ट पाते हुऐ अन्त में स्वामी पूर्णानन्द के कहे अनुसार तथा स्वामी विरजानन्द की भारी प्रतिष्ठा को सुनकर सन् 1860 में स्वामी जी मथुरा में स्वामी विरजानन्द की कुटिया पर पहुँचे।

स्वामी विरजानन्द जी वेदों तथा वेदों सम्बन्धी आर्ष ग्रन्थों के बड़े प्रकाण्ड विद्वान थे साथ ही व्याकरण पर भी उनका पूरा अधिकार था। स्वामी दयानन्द, स्वामी विरजानन्द के पास तीन साल रह कर व्याकरण का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया और अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदोकृत सूत्र तथा अन्य आर्षग्रन्थों का अध्ययन भी किया जिससे स्वामी जी वेदों के मन्त्रों का सही अर्थ लगाना सीख गये। तीन वर्षों तक स्वामी जी ने अपने सद्गुरू विरजानन्द की बड़ी सेवा की जिससे स्वामी विरजानन्द प्रसन्न होकर अपना पूरा ज्ञान स्वामी दयानन्द के मन, मस्तिष्क में उंडेल दिया जिससे स्वामी जी की ज्ञान पीपासा की तृप्ति हो गई। जब स्वामी जी तीन वर्ष में पूरा ज्ञान प्राप्त करके जाने लगे तब स्वामी जी अपने सद्गुरू को लौंग जो उनको अति प्रिय थी गुरू दक्षिणा के रूप में देने लगे, तब गुरू विरजानन्द ने नेत्रों से अश्रुधारा बहाते हुए कहा कि दयानन्द मैंने तुझे दक्षिणा में लौंग देने के लिए नहीं पढ़ाया था। मैंने तो बहुत बड़ी आशा लेकर पढ़ाया था। तब स्वामी जी ने कहा "गुरूदेव! आप आज्ञा करें, जो माँगोगे वहीं मैं आपको दूँगा। तब गुरू विरजानन्द ने कहा "दयानन्द! मैंने तुम्हें सत्य वेदों के ज्ञान से अवगत करा दिया है। यदि मुझे सच्ची गुरू दक्षिणा देनी है तो इसी सत्य ज्ञान को मानवों को प्रदान करना। बहुत दिनों से भारत वर्ष में वेदों की शिक्षा का प्रचार व प्रसार प्रायः बन्द है जिससे अज्ञान, अन्धविश्वास व पाखण्ड बहुत बढ़ गया है। तुम जाओ और लोगों को वेद सम्बन्धी सच्चे शास्त्रों की शिक्षा दो। संसार वेदों को भूल चुका है, तुम फिर से उनका उद्धार करो। विश्व में जो गलत प्रथाएं व कुरीतियाँ

(शेष पृष्ठ 7 पर)

विदुरनीतिः नीति भी दर्शन भी

ले.-डॉ. सत्यव्रत वर्मा

(गतांक से आगे)

5. वाक्संयम

मौन रहना (न बोलना) वाणी का एक रूप है, सत्य बोलना दूसरा रूप, प्रिय बोलना तीसरा रूप है, सत्य और प्रिय बोलना चौथा रूप है किन्तु सत्य और अप्रिय बोलना कड़ी परीक्षा है क्योंकि न ऐसे वक्ता सुलभ हैं, न ऐसे श्रोता-**अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः (5.15)।** वाणी पर संयम रखना कदाचित् सब से कठिन कार्य है पर बहुत ही सार्थक और रोचक बातें करना भी सम्भव नहीं है। सोच-समझकर बोली गई मीठी वाणी नाना प्रकार से मनुष्य का कल्याण करती है किन्तु कड़वी वाणी विपत्ति का कारण बनती है। कुठार से काटा गया पेड़ पुनः हरा हो जाता है पर वाणी का घाव कभी नहीं भरता-**न संरोहति वाक्क्षतम् (2.78)।** कुशल वैद्य शरीर में गहरे घुसे हुए बाणों को भी निकाल देते हैं, परन्तु हृदय में गड़े हुए शब्दों को निकालना सम्भव नहीं है। दुष्टों के मुँह से दिन-रात शब्दों के बाण बरसते हैं, जिनसे आहत हुआ व्यक्ति निरन्तर तड़पता रहता है क्योंकि वे मर्मस्थलों में बैठ जाते हैं। बुद्धिमान को चाहिए कि वे दूसरों पर ऐसे वाग्बाण न छोड़ें-**तान पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः (2.80)।**

क्रोधपूर्ण कठोर वाणी सदा त्याज्य है-**रूक्षां वाचं रुषतीं वर्जयेत् (4.6)।** रूखी वाणी मनुष्य के मर्मस्थानों, हड्डियों तथा प्राणों तक को भस्म कर देती है। जो वाणी के बाणों से दूसरे के मर्मस्थलों को बींधता है, उसे संसार का सब से दरिद्र व्यक्ति समझना चाहिये। कठोर वाणी के रूप में साक्षात् मृत्यु उसकी जिह्वा पर निवास करती है-**मुखे निबद्धां निऋतिं वै वहन्तम् (2.8)।** जो दूसरे के अपशब्दों को सह लेता है, उसका अप्रकट क्रोध ही गाली देने वाले को भस्म कर देता है और उसके पुण्यों को हर लेता है। विवेकशील व्यक्ति को उग्र वचनों के प्रयोग से बचना चाहिये-**धर्मारामो नित्यशो वर्जयेत् (4.7)।** यदि कोई विवेकहीन व्यक्ति बुद्धिमान् को वाग्बाणों से घायल करे, उसे पीड़ा सह कर भी यह समझना चाहिये कि इनसे मेरे पुण्यों की वृद्धि हो रही है (4.9)।

6. संगति-मित्रता-

मनुष्य जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसों के साथ मित्रता करता है और जैसा बनना चाहता है, वह वैसा ही हो जाता है। अतः उसे श्रेष्ठ व्यक्तियों की संगति करनी चाहिये। संकट आने पर वह मध्यम श्रेणी के लोगों के साथ भले ही मित्रता कर ले, अधम पुरुषों के साथ कभी नहीं (4.20)। दुर्जनों की संगति सज्जनों को भी डुबो देती है जिससे निर्दोष लोगों को अपराधियों जैसा दण्ड भोगना पड़ता है। सूखी लकड़ियों में मिली गीली लकड़ी को भी आग भस्म कर देती है। अतः दुष्टों के साथ कभी मित्रता नहीं करनी चाहिये।

औपचारिक सम्बन्ध न होने पर भी जो मित्रता का व्यवहार करता है, वही सच्चा मित्र, बन्धु और सर्वश्रेष्ठ सम्बल है। वह मित्र नहीं जिसका क्रोध मित्र को भी भयभीत करता हो या जिसकी डर-डर कर देखभाल करनी पड़ती है। जिस पर पिता की भाँति विश्वास किया जा सके और जिसके सान्निध्य में मनुष्य सहजता का अनुभव करे, वही वास्तव में मित्र है और तो बस संगी साथी हैं (4.37)। मित्रता को दृढ़ बनाने के लिए आपसी सम्मान आवश्यक है। मित्र का सदा सत्कार करना चाहिये भले ही वह निर्धन हो। मित्र की पात्रता अथवा पात्रता की परख संकट में होती है। अस्थिर-चित्त व्यक्ति के मित्र भी अस्थिर होते हैं। वे उसे शीघ्र छोड़ देते हैं। जिनका मानसिक तथा बौद्धिक स्तर समान हो, उनकी मित्रता कभी क्षीण नहीं होती (7.47)। विद्वानों के साथ मित्रता बहुत सोच-समझ कर करनी चाहिये। स्वयं उसके गुण-अगुण का विश्लेषण करने के अतिरिक्त अनुभवी व्यक्तियों के साथ परामर्श करना भी आवश्यक है (7/41)। धर्मात्मा, ज्ञानवान्, मधुरभाषी तथा प्रियदर्शी मित्र की सर्वात्मना रक्षा करना मित्र का दायित्व एवं कर्तव्य है। परन्तु जडमति तथा विचारशून्य व्यक्ति से दूर रहना ही अच्छा है। वह घास से ढके कूप के समान है। उसके साथ मित्रता ज्यादा देर नहीं चलती। घमण्डी, मूर्ख और दुस्साहसी व्यक्ति के साथ भूल कर भी मित्रता न करे। धर्मात्मा, सत्यवादी, मनस्वी, जितेन्द्रिय और मर्यादा-पालक व्यक्ति ही श्रेष्ठ मित्र होता है।

7. शील/सदाचार

विदुरनीति में शील या सदाचार के महत्त्व का मनोरम निरूपण है। जीवन को अर्थवत्ता शील से मिलती है। वस्तुतः जीवन और शील एक-दूसरे के पर्याय हैं। मनुष्य में शील प्रधान है। जिसका शील जाता रहा, उसके जीने का कोई अर्थ नहीं, चाहे उसके धन और बन्धु कितने भी हों। सच्चरित्र व्यक्ति की दुन्दुभि चतुर्दिक् बजती है। सब चुम्बक की भान्ति उसकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं। शील से सब कुछ जीता जा सकता है-**सर्वं शीलवता जितम् (2.47)।** सदाचारी व्यक्ति धनहीन होता हुआ भी धनवान् है किन्तु सदाचार से रहित व्यक्ति धनवान् होता हुआ भी निरा कंगाल है। मनुष्य को चाहिए कि वह घोर संकट में भी सदाचार की रक्षा करे, धन के प्रलोभन में फंस कर शील से विचलित न हो।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तेमेति च याति च।

अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।। 4.30

सदाचार से पुण्य की प्राप्ति होती है। दुराचारी पाप के गर्त में गिरता है। पाप से बचने में ही भलाई है। बार-बार किया हुआ पाप प्रज्ञा को नष्ट कर देता है। बुद्धि के कुण्ठित होने पर मनुष्य उत्तरोत्तर दुराचार में धंसता जाता है। सदाचार (पुण्य) से प्रज्ञा का विकास होता है। पुण्य करने से पापी भी पुण्य लोकों में जाता है, अतः मनुष्य एकाग्रचित हो कर सदाचार के मार्ग पर चले-**तस्मात् पुण्यं निषेवेत सुसमाहितः (3.29)।** आचरण की शुचिता स्वयं में अनुपम पुण्य है। सब प्राणियों के प्रति ऋजु-निश्छल व्यवहार और सब तीर्थों में स्नान, दोनों का पुण्य समान है। शायद निश्छल आचरण का पलड़ा कुछ भारी है। वेद भी कपटी की रक्षा नहीं कर सकते। कपटाचार की अति होने पर वे उसे ऐसे छोड़ देते हैं जैसे पंख निकलने पर पक्षी घौंसले से फुर्र हो जाते हैं-

सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम्।

उभे त्वेते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते।। 3.2

8. कर्म-

नियतिवाद में मनुष्य के बुद्धिपूर्वक कर्म का निषेध है। भूत, वर्तमान, भविष्य के समूचे क्रियाकलाप भाग्य द्वारा निर्धारित एवं नियन्त्रित हैं, सब कुछ नियति से संचालित है, मनुष्य के पुरुषार्थ की उसमें भूमिका नहीं है, अतः कर्म करना निरर्थक है: **मा कर्म कार्षीः मा कर्म कार्षीः, शान्तिर्वः श्रेयसी।** इसकी काट में विदुरनीति में कर्मपरायण मत का प्रतिपादन किया गया है, जो उद्योग, उत्साह और पराक्रम की त्रिपुटी पर आधारित है। इस कर्मप्रधान दर्शन में पराक्रम से अनर्थ को पछाड़ा जा सकता है और उत्साह जीवन का सर्वस्व है। उत्साहवान् मनुष्य ही जीवन में प्रेय और श्रेय प्राप्त करता है, जो उसे महान् बनाते हैं।

अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च।

महान् भवत्यनिर्विण्णः सुख चानन्त्यमश्नुते।। 7.57

विदुर की कर्मप्रधान नीति में कर्म की सुचिन्तित विधि है। उसमें आवेग अथवा आवेश का स्थान नहीं है। कोई भी काम हड़बड़ी में न किया जाए। कर्म करने का क्या उद्देश्य है, उसका क्या परिणाम होगा और उसे करने से क्या लाभ होगा, यह सब विचार कर ही उसे करने या न करने का निश्चय करना चाहिये। जिन कार्यों को पूरा करने में अनुचित उपायों का प्रयोग करना पड़े, उनमें मन न लगाए और पूरी सावधानी से करने पर भी यदि कोई कार्य उचित उपायों से सिद्ध नहीं हो, इससे बुद्धिमान् को मन छोटा नहीं करना चाहिये (2.6-7)। विदुर की व्यावहारिक नीति में कोई काम करने योग्य है अथवा नहीं; इसका निर्णय इस आधार पर किया जाए कि इसे करने से मुझे क्या लाभ होगा और न करने से क्या हानि होगी। जिस कार्य को किसी प्रकार साधना सम्भव नहीं है, उसे न करना बेहतर क्योंकि उस पर किया गया समूचा प्रयत्न व्यर्थ जाता है (2.20)। जो कार्य आरम्भ में भले ही छोटे प्रतीत हों किन्तु अन्त में बहुत लाभकारी हों, बुद्धिमान् व्यक्ति उन्हें करने में देर नहीं करता और उनके रास्ते में रुकावट को सहन नहीं करता।

9. महाकुल-

कुल समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई है जिसके आचार, मर्यादा और शील समाज को उत्कर्ष प्रदान करते हैं। विदुरनीति में महाकुलों के वैशिष्ट्य का जो निरूपण है, वह इन्हीं महान् गुणों से अनुप्राणित है। जिनका आचरण निष्कलंक है, जो प्रसन्नचित्त से धर्म का पालन करते हैं तथा असत्य का त्याग कर कुल की स्थायी कीर्ति की कामना करते हैं, उनके कुल ही महान् हैं। तप, इन्द्रिय-निग्रह, वेदज्ञान, दान, यज्ञ, शास्त्रानुकूल विवाह आदि वे गुण हैं जिनके पालन से कुल महान् बनते हैं। जिन दुर्गुणों से महाकुलों का पतन होता है, विदुरनीति में उनका भी उल्लेख है। मर्यादा का उल्लंघन

(शेष पृष्ठ 7 पर)

पृष्ठ 2 का शेष-इन्द्र व उसका सोमपान

पास गए तो ऋषि ने उनके भाव को जानकर अपने प्राण त्याग दिए। उसकी हड्डियों से इन्द्र ने उस असुर का वध किया... कालान्तर में यही कथा दधीचि ऋषि के नाम से प्रचलित हो गई कि दधीचि की हड्डियों के वज्र से इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया। यह कथा इसलिए गढ़ ली गई क्योंकि वेद मन्त्र में आए शब्दों के आलंकारिक वर्णन को सही-सही परिप्रेक्ष्य में नहीं समझा गया। मन्त्र में आए इन्द्र, दधीचि, अस्थभि: तथा वृत्र को लेकर एक बहुत ही रोचक कथा कल्पित कर ली जबकि मन्त्र का सीधा सा अर्थ है-**(अप्रतिष्कुत:)** स्थिर (इन्द्र:) इन्द्र ने (दधीच:) अपनी तेजरूप की (अस्थभि:) अस्थिर किरणों से (वृत्राणि) बादलों को (नवतीर्नव) निन्यानवे बार (जघान) मारा। भावार्थ रूप में इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि सूर्य अपनी धुरी पर स्थित है। सूर्य की किरणों की उष्मा से बादल बरसते हैं। यह प्रक्रिया वर्षा के महीनों में अर्थात् आषाढ़, श्रावण और भादों में चलती रहती हैं। बार-बार बादल उठते रहते हैं और बार-बार सूर्य उन्हें समाप्त करके वर्षा करता है। मन्त्र का आध्यात्मिक अर्थ इस प्रकार है-(इन्द्र:) जितेन्द्रिय पुरूष (अप्रतिष्कुत:) प्रतिकूल शब्द से रहित हुआ-हुआ, प्रतिद्वन्द्वी से रहित हुआ-हुआ (दधीच:) ध्यानी पुरूष की-(ध्यानं प्रत्यक्त:। निरू०12-33) (अस्थभि:) (असु क्षेपणे) विषयों को दूर फैंकने की शक्तियों से (वृत्राणि) ज्ञान की आवरणभूत वासनाओं को (नवती: नव) निन्यानवे बार (जघान) नष्ट करता है और इस प्रकार शतवर्षों को वासना-शून्य बनाता है। मन्त्रार्थ का भाव स्पष्ट है कि ध्यान-परायण व्यक्ति ही दध्यङ् व दधीचि है। विषयों को दूर फेंकने की वृत्तियां ही हड्डियां हैं। वासना ही वृत्र है। निन्यानवें बार नाश का अभिप्राय यही है कि हम सदा वासना के आक्रमण को अपने से दूर रखने के लिए सजग रहते हैं।

इसी प्रकार इन्द्र द्वारा गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या से व्यभिचार करना, गौतमजी का इन्द्र को तथा अहिल्या को शाप देना, श्रीराम जी के चरण स्पर्श से अहिल्या का उद्धार होना आदि भी कथा कल्पित कर ली गई है जबकि वास्तविकता यह है कि-**गच्छतीति गो: अतिशयेन गच्छतीति गौतम: चन्द्र:** अर्थात् जो शीघ्र चलता है उस चन्द्र का नाम गौतम है। **अहर्दिनं लीयतेऽस्यां तस्माद्रात्रि अहिल्या:** अर्थात् दिन जिसमें लीन हो जाता है उस रात्रि का नाम अहिल्या है। **'जृष वयो हानौ'** इस धातु से जार शब्द बना है, अर्थात् नष्ट करने वाला। इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो यह जो अश्लील एवं काल्पनिक कथा बना दी गई है, वह तो वास्तव में सूर्योदय और सूर्यास्त का बहुत ही मनोरम एवं हृदयग्राही आलंकारिक वर्णन है। जब इन्द्र (सूर्य) उदय होता है तब चन्द्रमा (गौतम) दूसरे छोर पर समुद्र की तरफ चला जाता है। उसके जाने पर सूर्य रात्रि रूपी अहिल्या को नष्ट (जारकर्म) कर देता है। जब सूर्य स्वयं अस्ताचल की तरफ जाता है उस समय अपनी किरणों (चरणों) के स्पर्श से जाते हुए भी अहिल्या (रात्रि) को पुन: जीवित कर देता है।

इन्द्र शब्द परमैश्वर्यार्थक 'इदि' धातु से उणादि 'रन्' प्रत्यय करके सिद्ध होता है। 'इन्द्र' के निरूक्त में प्रदर्शित कई निवर्चनों में से एक यह है-**इन्दन् शत्रूणां दारयिता** (निरूक्त 10-9)। इसके अनुसार परमैश्वर्यार्थक 'इदि' धातु तथा विदारणार्थक 'दृ' धातु के योग से इन्द्र शब्द बना है। जो परमैश्वर्यवान् होता हुआ शत्रुओं का विदारण करता है, वह 'इन्द्र' है। महर्षि दयानन्द जी ने इन्द्र के परमेश्वर, जीवात्मा, विद्वान् पुरूष, वीर राजा, प्राण, वायु, सेनानी, शूरवीर योद्धा, विद्युत्, यज्ञ, सूर्यलोक, किसान एवं वैद्य आदि अर्थ किए हैं।

आधिदैविक क्षेत्र में सूर्य इन्द्र है और वृत्र हैं-अन्धकार या बादल आदि। अधिभूत क्षेत्र में राजा या सेनापति इन्द्र और वृत्र हैं-देश पर आक्रमण करने वाले शत्रु आदि और आध्यात्मिक क्षेत्र में आत्मा इन्द्र है और वृत्र हैं-अज्ञानान्धकार एवं पापकर्म आदि। इन समस्त दृष्टिकोणों से इन्द्र द्वारा सोम-पान करने की संगति लगाई जानी अपेक्षित है तभी इन्द्र तथा उसके द्वारा किए गए सोमपान के रहस्य को हम भली प्रकार से समझ सकते हैं।

इन्द्र के सोमपान के सम्बन्ध में आचार्य वैद्यनाथ शास्त्रीजी अपने ग्रन्थ 'वैदिक-यज्ञदर्शन' में लिखते हैं-'इन्द्र शब्द के अनेकार्थ हैं। परन्तु यहां पर उन सभी पर विचार नहीं करना है। इस समय तो यज्ञ के देव इन्द्र का वर्णन अपेक्षित है जो यज्ञ में सोमपान करता है। यह इन्द्र एक प्रकार का वायु है। सोम क्या वस्तु है यह भी समझ लेना चाहिए। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार यह सोम इस पृथिवी से तृतीय द्यु में रहता है। इसे ही सूर्य का चक्षु-प्रकाशक कहा गया है। पहले परमेष्ठीमण्डल का वर्णन करते हुए भी यह बतलाया गया है कि सोम सूर्य के चारों तरफ भरा है। श्येन भी एक प्रकार का वायु है जो सोम का सहायक है। यह सोम के बढ़ाने और फैलाने में सहायक है।

यह सोम जिसका अनुचर वाहक श्येन है चार प्रकार का है-राजा, वाज, ग्रह और हवि:। ग्रह भी एक प्रकार का वायु है। यह ग्रह भी 30 प्रकार का होता है। इनके उपांशु, अन्तर्याम, उपांशुसवन, ध्रुव, दक्ष, क्रतु, माहेन्द्र, आश्विन, शुक्रामन्थी और आग्रयण आदि नाम है। ये सब अत्यन्त सूक्ष्म वायु हैं।

वायु का यदि विश्लेषण सूक्ष्मरूप से किया जावे तो ऐसा ही परिणाम आएगा। यदि 100 भाग मारूत वायु लिया जावे तो 80 अंश साधारण वायु और 20 अंश इन्द्रवायु का होगा। वायु के इस प्रकार 49 भेद पहले कहे गए हैं। इसीलिए कहा गया है कि **'इन्द्रतुरीयग्रहा: गृह्यन्ते'** अर्थात् इन्द्र है चतुर्थ जिनमें ऐसे ग्रहों का ग्रहण किया जाता है। यही इन्द्र वायु सोम को पीता है। कपूर, कस्तूरी तथा उड़नशील पदार्थों को यह वायु चट कर लेता है। यही यज्ञ के सूक्ष्म तत्व को ले लेता है। यही इन्द्र का सोमपान है।'

पृष्ठ 5 का शेष-''महर्षि दयानन्द की गुरु श्रृंखला...

चली हुई हैं उनको मिटाने का जीवन भर प्रयास करो। बस! यही मेरी गुरू दक्षिणा है। गुरू चरणों में नतमस्तक होकर स्वामी जी उनके आदेश का पालन करने का विश्वास दिला कर और आशीर्वाद प्राप्त करके अपने कार्य क्षेत्र में कूद पड़े और जीवन भर अनेक दु:खों व कष्टों को सहकर वेदों का प्रचार व प्रसार किया तथा मूर्त्तिपूजा, श्राद्ध, तर्पण, बाल विवाह, वृद्ध विवाह, यज्ञों में पशु बली, सती प्रथा आदि कुप्रथाओं व कुरीतियों को जड़-मूल से नष्ट करने का जीवन भर प्रयत्न किया और 'आर्य समाज' जैसी परोपकारी संस्था की स्थापना करके आगे भी इन कार्यों को करते रहने का साधन बना कर केवल 59 वर्ष की आयु में 30 अक्तूबर 1883 को अमर गति को प्राप्त हुऐ। इस प्रकार स्वामी विरजानन्द स्वामी जी के अन्तिम और सातवें गुरू हुए।

इस प्रकार लेख के शीर्षक का कार्य पूरा हुआ और सुधि पाठकों से इस लेख से अपने ज्ञान की वृद्धि करेगे, इस आशा के साथ लेख को यहीं विराम देते हैं।

पृष्ठ 6 का शेष-विदुरनीति: नीति भी...

करने, देवधन एवं ब्राह्मणधन का अहरण करने, ब्राह्मणों की अवज्ञा करने तथा परायी धरोहर को हड़पने से श्रेष्ठ कुल भी अपना गौरव खो बैठते हैं (4.25-27)। जो कुल धन से सम्पन्न होने पर भी सदाचार से शून्य हैं, उनकी गिनती अच्छे कुलों में नहीं होती। इसके विपरीत जो कुल सदाचार की पूँजी से मालामाल हैं, वे श्रेष्ठ कुलों में गिने जाते हैं और उन्हें उज्ज्वल यश की प्राप्ति होती है, चाहे उनके पास अधिक धन न हो (4/29)। सदाचार से ही कुल महान् बनते हैं, धन तो आने-जाने वाला है। कृषि, पशुधन और समृद्धि से सम्पन्न होकर भी जो कुल सदाचार से रहित हैं, वे फलते-फूलते नहीं। कुल की उत्कृष्टता-निकृष्टता की परख उसकी धन-सम्पत्ति, गृह सामग्री, सत्कारविधि, भोजन और वस्त्रों की श्रेष्ठता से होती है। जैसे छोटा-सा रथ भी भारी बोझ ढोता है, उसी प्रकार कुलीन सदाचारी पुरुष भी बड़े दायित्वों को निभाने में कुशल होते हैं।

महर्षि दयानन्द जन्म स्थान टंकारा में बोधोत्सव का आयोजन

आर्यजनों को यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता होगी कि प्रतिवर्ष की भांति आगामी वर्ष में महर्षि दयानन्द जन्म स्थान टंकारा में शिवरात्रि के पावन पर्व पर भव्य ऋषि बोधोत्सव का आयोजन वीरवार, शुक्रवार, शनिवार 20,21,22 फरवरी 2020 को किया जायेगा। आपसे निवेदन है कि आप यह तिथियाँ अभी से अंकित कर लेवें और इन तिथियों में अपनी आर्य समाज एवं अपनी संस्था का कोई कार्यक्रम न रखकर उक्त समारोह में अधिक से अधिक आर्यजनों के साथ टंकारा पधारने का कार्यक्रम बनायें। आपके आवास एवं भोजन की व्यवस्था टंकारा ट्रस्ट की ओर से होगी।

वेद प्रचार सप्ताह का आयोजन

जालन्धर आर्य समाज अड्डा होशियारपुर में श्रावणी उपाकर्म वेद प्रचार सप्ताह का आयोजन दिनांक 12 अगस्त 2019 से 18 अगस्त 2019 रविवार तक किया जा रहा है। इस अवसर पर आर्य जगत के आर्य जगत के उच्चकोटि के विद्वान् आचार्य महावीर जी मुमुक्षु मुरादाबाद के प्रवचन तथा श्री राजेश प्रेमी के सुमधुर भजन होंगे। आप सभी इस अवसर पर सपरिवार इष्टमित्रों सहित पधार कर धर्म लाभ प्राप्त करें।

सोहन लाल सेठ महामन्त्री आर्य समाज

ओ३म्

Tel : 0161-2443365, 2440766
Fax : 0161-2446660

आर्य कॉलेज, लुधियाना

Rishi Dayanand Marg, Civil Lines, Ludhiana-141001
E-mail : aryacollegeldh@yahoo.in Website : www.aryacollegeldh.com

Ref. No. Acl 2019-482

Dated 15-07-2019

सविधे

श्री प्रेम भारद्वाज जी,
महामंत्री, आर्य प्रतिनिधि सभा (रजि.) पंजाब,

कोटि -कोटि नमन व हार्दिक अभिनन्दन।

हमें आपका पत्र सं. 2193-19, दिनांक-05.07.2019 प्राप्त हुआ। जिसमें आप द्वारा कॉलेज में 'वृक्षारोपण' तथा जल सुरक्षित करके पर्यावरण को प्रदूषण रहित बनाने के लिए प्रोत्साहित किया गया था। उपुर्युक्त पत्र के संदर्भ में कॉलेज में आयोजित पौधारोपण कार्यक्रम का विवरण निम्न उल्लिखित है-

सहर्ष हमें इस बात का गर्व है कि आप जैसे महान व्यक्तित्व और सदविचारक हमारे लिये सर्वदा प्रेरणास्त्रोत रहे हैं। आपको सूचित करते हुए बहुत हर्ष की अनुभूति हो रही है कि आपके द्वारा प्राकृतिक वातावरण को सहेजने के लिए किए गए दिग्दर्शन अनुसार कॉलेज की एन.एस.एस. युनिट और गाइडिंग क्लब के संयुक्त तत्वावधान से 'वृक्षारोपण' कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम का शुभारम्भ दिनांक-13.07.2019 को लुधियाना के एडिश्नल कमिश्नर (आई.टी.) श्री रोहित कुमार मेहरा ने, कॉलेज के बॉटनी विभाग के मुखी डॉ. अनिल गुप्ता के सहयोग से अपने कर कमलों से कॉलेज में दो पंचवट्टियां लगाकर किया गया।। जिसमें पांच दिशाओं में पीपल, बेल, वट, आंवला व अशोक के वृक्ष लगाए गये। हमारे मनीषियों द्वारा प्राचीन काल में अनेक प्रयोगों, अनुभवों द्वारा इस प्रकार का मानव कल्याणकारी बहुपयोगी 'वृक्ष समूह' पंचवटी नाम से अन्वेषित किया गया है। पंचवटी के पांच वृक्षों की छाया तेजोवलय, औषधीय गुणों, पर्यावरणीय एवं अन्य विशिष्ट गुणों का समन्वय एक निश्चित अनुपात, मात्रा एवं तीव्रता के साथ सूर्य व चन्द्र के प्रकाश के होने से विशिष्टता प्राप्त करता है। इन वृक्षों अथवा इनके फलों से न केवल सामान्य से अलग वातावरण तैयार होता है अपितु उससे मानव शरीर की प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है। भगवान श्री कृष्ण ने गीता के विभूतियोग में "अश्वत्थ:(पीपल) सर्व वृक्षाणाम्" कहकर वृक्षों की महिमा का गुणगान किया है।

इसके साथ ही कॉलेज में एक 'लघु वन' बनाने की योजना तैयार की गई है, जिसका कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा। इस लघु वन में 250 से 300 वृक्षारोपण किए जायेंगे। ये वृक्ष जहां पारिस्थितिक संतुलन सुनिश्चित तथा प्रकृति को संरक्षित करेंगे, वहीं भूमि का क्षरण रोकने के लिये काफी मददगार साबित होंगे। हमें बताते हुए अति प्रसन्नता हो रही है कि लघु वन योजना में हमने 100 छात्रों को अपने साथ जोड़ा है जो वृक्षों को लगाने व उन्हें पोषित करने का दायित्व उठायेंगे। इससे कॉलेज का प्राकृतिक वातावरण सुरम्य, मनोहर, स्वास्थवर्धक व प्रदूषण रहित होगा। उपुर्युक्त प्रकृति संरक्षण के अभियानों व उपायों से समाज में भी जागरुकता फैलेगी।

आशा है कि भविष्य में भी आप अपने कुशल व कल्याणकारी निर्देशन से हमारा मार्ग प्रशस्त करते रहेंगे।

आपका कोटि कोटि धन्यवाद व हार्दिक अभिनन्दन।

भवदीया,
डॉ.सविता उप्पल,
प्राचार्या

15.7.2019

वेदवाणी

पंख खुले हैं

सहस्त्राह्नचं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पतत: स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि विश्वा।।

-अथर्व० १०।८।१८

ऋषि-**कुत्स:**।। देवता-**आत्मा**।। छन्द:-**अनुष्टुप्**।।

विनय-मनुष्य प्रतिक्षण चेष्टायमान है। जीव को दिन-रात किसी-न-किसी अभीष्ट के पाने की चाह, या किसी के दु:ख को हटाने की चाह लगी रहती है और उसके लिए वह सदा कुछ-न-कुछ करता रहता है। जीव को तब तक चैन नहीं मिल सकता जब तक कि वह उस अवस्था में न पहुँच जाए, जहाँ उसे कुछ कमी न रहेगी, जहाँ उसकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जाएँगी, सब दु:ख समाप्त हो जाएँगे। उस स्वर्गलोक को पाने के लिए यह 'हरि' (इधर-उधर फिरने वाला) हंस न जाने कब से उड़ रहा है। यह अपने अभीष्ट लोक को कब पहुँचेगा ? यह लगातार ज्ञान और कर्म के सहारे से उस स्वर्ग को न जाने कब से ढूँढ रहा है! सुख-प्राप्ति के विषय में उसे जो ज्ञान मिलता है उसके अनुसार वह कर्म करता है, कर्म करने के बाद उसे कुछ अन्य नया अनुभव (ज्ञान) मिलता है, तब वह उसके अनुसार कर्म करता है। इस प्रकार यह हंस अपने ज्ञान और कर्म (अन्दर से बाहर की ओर चेष्टा और बाहर से अन्दर की ओर चेष्टा, प्राण और अपान) के पंखों को हिलाता हुआ उड़ा चला जा रहा है। हज़ारों दिन बीत गये हैं पर उसके पंख फैले ही हुए हैं। न उसे अभीष्ट स्वर्ग मिलता है और न वह अपनी उड़ान बन्द करता है, परन्तु मज़ेदार बात यह है कि स्वर्ग के सब देवों को, सब देव-गुणों को अजरत्व, अमरत्व, निष्कामत्व, पूर्णत्व आदि सब देवत्वों को-अपने हृदय में लिये हुए फिर रहा है। वह लाखों योनियों में, लोकों में, नाना देशों में, उड़ रहा है। इस जगत् की सब उत्पन्न वस्तुओं, सब भुवनों को देखता हुआ जा रहा है, पर सब देश तो उसके हृदय में ही स्थित हैं, अत: उसे जब कभी स्वर्ग की प्राप्ति होगी, तब उसे अपने हृदय में ही होगी। तब तक वह असंख्यात स्थानों में, प्रभु की इस अगम्य सृष्टि के करोड़ों भुवनों को देखता हुआ विचर रहा है, चौबीस घण्टे ज्ञान और कर्म की कुछ-न-कुछ चेष्टा करता हुआ स्वर्ग को ढूँढ रहा है, अपने इन पंखों को फड़फड़ाता हुआ निरन्तर गति कर रहा है। अहो! यह कब अपने लक्ष्य पर पहुँचेगा? किस दिन अपने पंखों को समेटकर बैठेगा? इसके पंख तो हज़ारों-हज़ारों दिनों से खुले हुए हैं!

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड़ जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**